तत्त्व दर्शन

दर्शकः

प्रशान्त घनश्याम-जमुना देसाई

रत्न ५

Tatva Darshan

based on

Siddhāntmuktāvalī

of

Pujya Shrī Vallabhāchārya

Written & published by

Prashant Desai

Dipt.me

e-publication

June 1, 2025

मूल्यः सहयोग-सेवा

© Prashant Desai

All Rights Reserved.

Without the prior written permission of the publisher,

This book may not be reproduced or sold in any form.

Email: usha.dipt@gmail.com / Visit at: www.dipt.me

हरिॐ नमो भगवते श्रीकृष्णाय वासुदेवाय

श्रीवल्लभाचार्यविरचितम्

॥ सिद्धांतमुक्तावलि ॥

आधारित

श्रीवल्लभ साहित्यमाला : रत्न - ५

तत्त्व दर्शन

श्लोक पदच्छेद अन्वय
भाषांतर तात्पर्य

दर्शक : प्रशांत घनश्याम-जमुना देसाई

प्र.लेख

तत्त्व, तत् = वो = परमात्मा.. भगवान। सबसे संक्षिप्त व श्रेष्ठ नाम! तत्! अब त्व प्रत्यय लगनेसे, उसके संबंधमें.. उसके संदर्भमें, ऐसा अर्थ होगा। आचार्यने इसी तत्त्वका दर्शन सिद्धांतमुक्तावलिमें किया है। सिद्धांतोंके मोतियोंकी माला तो है ही, साथमें श्रीकृष्ण नामके तत्त्वका दर्शन है! यह गुह्य वात है।

भगवानने गीतामें चार प्रकारके भक्त गिनायें है। आर्त.. दुःखी, जिज्ञासु.. ज्ञान पीपासु, अर्थार्थी.. धनप्रार्थी या सत्यप्रार्थी और ज्ञानी.. विज्ञाता। उसमें ज्ञानी सबसे प्रिय, ऐसा स्पष्ट कहतें है। कारण उसको भगवानका तात्त्विकज्ञान है जो कभी नष्ट न होगा और इसलिये वो भगवानको चीपकके रहेगा। सृष्टिके भौतिक तत्त्वोंके ज्ञानके साथ और दैविक तत्त्वोंके ज्ञानके साथ, इस परमतत्त्वका ज्ञान भी आवश्यक है। आचार्यश्रीने हरि शब्द समझाया है! उसी श्रीकृष्णको परम तत्त्वके रूपमें इसी ग्रंथमें समझातें है।

सात्त्विक मनुष्य समझ सकें! इसलिये प्रथम प्रयत्न ही सात्त्विक बननेका होना चाहिये। राजसिक और तामसिक आहार, विहार, विचार और आचारसे दूर रहेना चाहिये। सात्त्विक आचार आचरें वो ही आचार्य! कारण शब्दका अर्थ ऐसा है, आचरने योग्य! जिनके आचरणका ही अनुसरण करना योग्य है वो! कोई कालमें आचार्यकी पदवी.. उपाधी.. डीग्री थी, महत्तम काशीमें देतें थे। आज स्कुलोंमें प्रिन्सीपलको आचार्य कहतें है, अर्थात् शिक्षक.. गुरु, पिता या दादा, वडील.. वाली, नेता या प्रणेता, कोई भी आचार्य हो सकतें है.. कर सकतें है पर सोच समझके, विचार करके! क्योंकि पूरे जीवनके विकासका प्रश्न है!

धर्मकी सीधी सादी व्याख्या है, महाजनो गताः येन स पन्था। महापुरुष जिन रास्ते पर गयें, वो ही हमारा रास्ता! कलियुगमें भगवानकी कृपा हो तभी सच्चे महापुरुषका कलन होगा! गलत गुरुओंसे भगवान बचावें! इसलिये जो अर्थार्थी होना हो तो भगवानके पास सच्चे आचार्यकी मांग करें जो जीवन बदल दें!

आचार्य श्रीवल्लभने, भक्तिमार्गका अतिसुंदर निरूपण किया है। इस सिद्धांतोंकी मुक्तावलि.. मोतियोंकी माला, एक विशेष पद्धतिसे मनुष्य जीवन समझाती है। पांच प्रकारके मनुष्य है। ः मानवदेह पाकर जो प्रवाहमार्गी है, उसमें दो प्रकार है।

(१) आसुरी संपदावाले पूरे तामसिक प्रवाहमार्गी है, उनका अवश्य पतन होगा। (२) दैवी संपदावाले प्रवाहमार्गी, सात्त्विक जीवनसे वे सद्गति.. विकास पातें है। (३) मर्यादामार्गी, जो सांप्रदायिक है, सांस्कृतिक परंपराओंको मानतें है, वैसे ही जीतें है। धर्मी है पर राजसिक.. रूढीचूस्त है! ज्यादा प्रयत्न करें, सत्संग सेवा पुरुषार्थ करें तो भगवान पुष्ट करेंगे ही! नास्तिक साधक होगा तो ज्ञानमार्ग लेगा। (४) ज्ञानमार्गी.. संन्यासमार्गी या पुष्टिमार्गी.. जो जीवनको पूर्ण सात्त्विक करके, कर्मोंसे और भक्तिसे पुष्ट हुए है, वैसे भगवानको प्रिय हुए भक्तगण और अंतमें (५) सिद्ध संन्यासी या पुष्ट भक्त.. ज्ञानीभक्त। ब्रह्मज्ञानसे गुणातीत हुए और जिनका जीवन ही भगवानने स्वीकार लिया है वे, जो महापुरुष नामसे प्रसिद्धि पातें है। वैसे पूर्णभक्तोंके जीवन आदर्शरूप होतें है, उनके मार्गदर्शनसे हमारे जीवनको पुष्टि मिलेगी, पुष्टिमार्गी होंगे, अन्यथा सभी मर्यादामार्गी ही है।

सिद्ध संन्यासीको भगवान मिलतें है, पर अक्षरब्रह्म स्वरूपमें या जिसे वे शून्य कहतें है.. निर्वाण कहतें है। वैसे भगवान ज्ञानीभक्तको मिलतें है, पर भक्त चाहें उसी स्वरूपसे! यही द्वैतकी.. भक्तिकी विशेषता है। मनुष्यका लक्ष्य तो एक परमात्मा ही है परंतु कौनसा मार्ग पसंद करतें है वह अगत्यता है। अन्य ग्रंथमें आचार्यश्रीने सिद्ध किया है कि कलियुगमें भक्ति ही श्रेष्ठ और सरल उपाय है।

यहाँ महान आचार्य श्रीवल्लभने श्रीकृष्ण तत्त्वका निरूपण किया है, दृष्टांतोंके साथ स्पष्ट समझ दी है इसलिये सरल हुआ है। भगवानने एक ही अवतार लीया है, श्रीकृष्णका! इसलिये पूर्णपुरुषोत्तम कहलातें है। दूसरें सभी अवतार आंशिक है या विष्णु और शिवके है। तात्त्विक दृष्टिसे त्रिदेव.. ब्रह्मा-विष्णु-महेश, भगवान नहीं परंतु देव है; भगवान कहतें है वो अलग वात है। हम तो किसीको भी भगवान कह देतें है, कारण भगवान शब्दका अर्थ जानतें नहीं है! पूर्णतः सर्वशक्तिमान कोई हो ही नहीं सकता, भगवानने रचना ही ऐसी की है। त्रिदेवोंसे लेकरके ब्रह्मांडकी सभी वस्तु या व्यक्ति, भगवानका एक अंश मात्र है! अब कल्पना करें भगवान कौन है! और उसी तत्त्वके अवतार थे श्रीकृष्ण नामसे। वेदव्यासने इसलिये लिखा, कृष्णस्तु भगवान्स्वयम्।

तो इस ग्रंथको शांतिसे पढकर, विचार करके आत्मसात् करेंगे। श्रीहरि सभीको सहाय करें ऐसी अभ्यर्थना सह...

१ नत्वा हरिं प्रवक्ष्यामि स्वसिद्धान्तविनिश्चयम्।
कृष्णसेवा सदा कार्या मानसी सा परा मता॥

नत्वा	हरिम्	प्रवक्ष्यामि	स्वसिद्धान्त	विनिश्चयम्
नमकर	श्रीकृष्णको	कहता हूँ	स्वयंके सिद्धांत	यथार्थ निश्चय करके

कृष्णसेवा	सदा	कार्या	मानसी	सा	परा	मता
कृष्णकी भक्ति	नित्य	किया करें	मानसमें	उसे	परम.. श्रेष्ठ	मानी है

हरिम्.. श्रीकृष्णम् नत्वा स्वसिद्धान्तम् विनिश्चयम् (अहम् आचार्य वल्लभ) प्रवक्ष्यामि। सदा मानसी कृष्णसेवा कार्या, सा परा मता (परतः च स्वतः मतः)॥

श्रीहरि.. श्रीकृष्णको प्रणाम करके, व्यवस्थित निर्णय करके, (मैं वल्लभाचार्य) स्वसिद्धांत.. मेरा निश्चित मत कहता हूँ। नित्य.. सदाकाल मानसी.. मनसे.. मनमें कृष्णसेवा.. कृष्णभक्ति किया करें; जिसको परम.. श्रेष्ठ मानी है। (दूसरोंके तथा मेरे अभिप्रायसे।)

तात्पर्य ः ज्ञानीभक्त नरसिंहने लिखा है, कृष्ण बीन दूजा सभी कच्चा! और ...यहाँ कोई नहीं कृष्ण सरीखा! आचार्यश्री सबसे पहले यही कहतें है, यहाँ कृष्ण सिवाय कोई नमने योग्य है ही नहीं! इसलिये प्रथम हरिको नमन करके स्वसिद्धांत स्थापित करता हूँ। सिद्धांत अर्थात् प्रयोगोंके पश्चात् या तपश्चर्याके अंतमें सत्य सिद्ध हूआ अंतिम निर्णय या निश्चित मत।

लगता है यही है प्रथम सिद्धांत! भगवान सिवाय किसीको नमें नहीं। हम ऐसे वैसोंके पैरोंमें झुककर अपनी बुद्धि हलकी करतें है। भगवानको, गुरुतुल्य महापुरुषको और माता-पिता सिवाय सभीको नमस्कार होता है, पैर नहीं छूते!

श्रीकृष्ण सर्वके अंशी है, किसी भी देवी-देवता या अवतारी पुरुष हो, वे कृष्णके अंशरूप है। अब अंशकी भक्ति करनी है या अंशीकी? इसलिये श्रीकृष्ण सेवाका आग्रह है। मानसी.. प्रसन्न मनसे, जागृत मनमें ही! मानसिक तपसे.. श्रीकृष्ण तत्त्वका मनन करते हूए, भजन-कीर्तन या सेवन-पूजन होने चाहिये। आचार्यजी कहतें है, ये मानसी सेवा ही सच्ची, परम श्रेष्ठ भक्तिका स्वरूप है। सभी आचार्यों और भक्तोंने यह मानसी सेवा मान्य की है, करने योग्य है।

२ चेतस्तत्प्रवणं सेवा तत्सिद्ध्यै तनुवित्तजा।
ततः संसारदुःखस्य निवृत्तिर्ब्रह्मबोधनम्॥

चेतः	तत् प्रवणम्	सेवा	तत्	सिद्ध्यै	तनु	वित्तजा
चित्त	उसमें लगा रहे	सेवा	उसकी	सिद्धि हेतु	तनसे	धनसे होती

ततः	संसार-दुःखस्य	निवृत्तिः	ब्रह्मबोधनम्
पश्चात्	संसाररूपी दुःखकी	निवृत्ति होगी	ब्रह्मका बोध, ज्ञान होनेसे

(सर्वदा मनोजा..) चेतः तत्.. श्रीकृष्णात् सेवा प्रवणम् (स्यात्। अपितु असंभवात्) तत् सिद्ध्यै तनु(जा च) वित्तजा (सेवा प्रबन्धयेत्)। ततः ब्रह्मबोधनम् (च) संसारदुःखस्य निवृत्तिः (भवमुक्तिः स्यात्)॥

(सर्वकालमें मानस..) चित्त उस.. श्रीकृष्णकी सेवामें प्रवण.. भक्तिमें लीन.. परायण (रहेना चाहिये, पर वो संभव न हो तो) उसकी सिद्धिके लिये, देहसे और वित्तसे (होती सेवाओंका प्रबंध करें। उससे शुद्धि होगी और) तत्पश्चात् ब्रह्मका बोधन होगा, संसाररूपी दुःखकी निवृत्ति.. मुक्ति होगी। (भवमुक्ति होगी।)

तात्पर्य ः योगश्चित्तवृत्ति निरोधः। इस योगसूत्रके आधारसे, चित्त सर्व वृत्तियाँ रोककर या नष्ट करके, मात्र प्रभुमें लीन रहें तो उत्तम है। सत्वर ब्रह्मबोधन होगा, पर संसारी लोगोंको कहाँ शक्य है? हरिमें मन लगाना अशक्य है।

एक वात प्रचलित है, तन मन धनसे सेवा! यहाँ आचार्यश्री योग्य क्रम दर्शातें है, प्रथम तनुजा.. प्रभुकार्यमें हाथ-पैर घिसें! शरीर साधन प्रवृत्त हो! उसके लिये समय देना ही पडेगा! वो हुआ समयधनदान, बादमें वित्तजा सेवा! वित्तसे भगवान और सेवा मिलते नहीं और किसीको वित्त देकर छूट नहीं सकतें! ये सेवा नहीं! वित्तजा अर्थात् जिसमें चित्त शुद्ध हो उसमें वित्त लगाना। वित्तसे नाम नहीं, मान नहीं या कोई काम नहीं; मात्र चित्तकी शांति हो। कुछ भी करो, शांत मन ईश्वरमें लगना चाहिये, यह प्रथम वात है।

तन-धनसे मनकी शुद्धि होगी, मन शुद्ध होनेसे ही आत्मप्रकाश होगा.. ब्रह्मबोधन होगा। पश्चात् सच्ची भक्तिका आरंभ होगा! फिर आनंदका रंग होगा! अब संसार या सुख-दुःखको स्थान नहीं, यही है संसारनिवृत्तिका सिद्धांत!

३ परंब्रह्म तु कृष्णो हि सच्चिदानन्दकं बृहत्।
द्विरूपं तद्धि सर्वं स्याद् एकं तस्माद्विलक्षणम्॥

परंब्रह्म	तु	कृष्णः	हि	सत्-चित्-आनन्दकम्	बृहत्
ब्रह्मसे परे	सचमें	कृष्ण	ही	सत् चित् आनंद स्वरूप	ब्रह्मांड

द्विरूपम्	तत्	हि	सर्वम्	स्यात्	एकम्	तस्मात्	विलक्षणम्
दो रूपमें	वो	ही	सर्वरूप	व्याप्त है	एक	इसलिये	विलक्षण है

तु कृष्णः हि परंब्रह्म (तथा) सच्चिदानन्दकम् बृहत् (ब्रह्म)। तत् हि द्विरूपम् सर्वम् स्यात्। तस्मात् विलक्षणम् एकम् (अद्वितीय्)॥

सचमें, श्रीकृष्ण ही परंब्रह्म.. ब्रह्मसे भी परे.. ब्रह्मके अंशी है (तथा) सत्-चित्-आनंद स्वरूप बृहद् (ब्रह्मांड उनका ही अंश है, इसलिये आत्मतत्त्वरूप और ब्रह्मतत्त्वरूप ऐसे) वो ही दोनों रूपसे सर्व व्याप्त है। इसलिये विलक्षण एकत्व है।

तात्पर्य ः ये ही विलक्षण.. असामान्य सिद्धांत है। बुद्धिके लिये पारलौकिक है! यहाँ एक पहेली.. पझल है; तुरंत समझमें आयें ऐसा कौतुक है। तो शब्द है, जीवात्मा! समास है, जीव और आत्मा।

मोटरगाडी मोटरगाडी सभी जीवकी मोटरगाडी,
हर कारकी तय है अवधी, प्रति कारमें दो सवारी,
एक प्रवासी बंदी कारमें, एक प्रवासी हर कारमें!
बद्धयात्री ही रागमार्गी है, गतिरूपमें रामयात्री है!

उसमें आत्मा ही विलक्षण तत्त्व है, अविज्ञेय है। एक परमात्म तत्त्व जो नित्य था.. है.. रहेगा; वो अंशी.. सर्व अंशका मूल है। उसको हूआ एकोऽहं बहुस्याम् प्रजायैः। मैं एक हूँ, अनेक बनूं! कारण, न एकाकी रमते.. अकेले खेल नहीं सकते!

भगवान ही ब्रह्मरूप.. बृहद हूए। आचार्यश्री कहतें है, उनका भगवद्रूप और ब्रह्मरूपसे रहेना ही विलक्षणता है। पश्चात् ब्रह्म ही अपराप्रकृति और पराप्रकृति बना! वो ब्रह्मका एक अंश जीवरूप और दूजा अंश देहरूप हूआ, उसमें बद्ध हूआ क्यों? रमतके आनंद हेतु! शिवसे जीव हूआ इसी आसमें! उसके लिये पूरा विषयजगत निर्माण किया। अब रमत इतनी ही है, विश्वका परदा हटाकर उसे खोज लेना है। वो दूर नहीं साथ ही है! उसीसे ही गति है और वो ही गंतव्य है; फिर भी विषयबद्ध जीव, साथमें रहते आत्माको पा नहीं सकता! उसको ही प्रभु माया कहतें है! अब प्रभुका शरण लेकर ही उसे जान सकतें है, पा सकतें है।

४ अपरं तत्र पूर्वस्मिन् वादिनो बहुधा जगुः।
मायिकं सगुणं कार्यं स्वतन्त्रं चेति नैकधा॥

अपरम्	तत्र	पूर्वस्मिन्	वादिनः	बहुधा	जगुः
भिन्न (मत)	वहाँ	प्राचिन	मतवादी	बहोत	जग उत्पत्तिमें

मायिकम्	सगुणम्	कार्यम्	स्वतन्त्रम्	च	इति	न	एकधा
मायावाद	सगुणवाद	कार्यवाद	स्वतंत्रवाद	और	ऐसे	नहीं	एकरूप

तत्र अपरम् (मताः) पूर्वस्मिन् बहुधा जगुः वादिनः। मायिकम् सगुणम् कार्यम् च स्वतन्त्रम् इति (मताः अनेकविधः) न एकधा॥

वहाँ अपर.. अन्यके (मत-मतांतर) पूर्वकालमें, जगतकी उत्पत्ति बारेमें, वादी.. दर्शनकार बहोत (हूए, जैसेकी) मायावाद, सगुणवाद, कार्यवाद और स्वतंत्रवाद ऐसे (मत अनेकविध है फिर भी वे) नहीं एक प्रकारके।

तात्पर्य : वादविवादोंकी चर्चाको स्थान नहीं है। उसमें कलियुगके उत्क्रांतिवाद, ग्रंथिवाद और अणुवाद जैसे अर्धसत्य हो वहाँ क्या होगा? कोई एकमत नहीं, यह सत्य है। वास्तविक देश-काल आधारित विभिन्न मत रहेंगे ही।

वृक्ष प्रथम या बीज? कोई उत्तर है? इसलिये जैसे भगवान अव्यक्त है वैसे, उनका ब्रह्म स्वरूप.. महत्प्रकृति भी अव्यक्त है। उनके आरंभ या अंत अकल्पनीय है। कोई कहे कि हम जन्में वो सृष्टिका आरंभ व मरें तो अंत! 'मैं हूँ तो सृष्टि है, मैं नहीं तो सृष्टि नहीं!' यह कितना सत्य है? ऐसे ये सभी वाद-विवाद है।

आचार्यश्रीने पंडितो समक्ष सिद्धांत रखना था, इसलिये सिद्ध किया होगा कि उपरोक्त विभिन्न मत कहाँ गलत है। यहाँ मात्र नाम निर्देश है। आचार्य शंकरने भी जो मायावाद खडा कीया, वो कालके अनुरूप, बौद्धोंको परास्त करने हेतु ही! अन्यथा वेद विरुद्ध वो क्युं जायेंगे? सभी आचार्य ब्रह्मसूत्रके सिद्धांत जानतें है कि, लोकवत् तु लीला कैवल्यम्! यह भारतीय सनातन सिद्धांत है कि सृष्टि लीला.. रमत और आनंदके लिये रची गई है।

अब, महापुरुष तो रमत पूर्ण करके, पूर्णानंदमें संमिलित हो गयें! प्रश्न अपना है! कौनसा रास्ता लेंगे जिससे सरलतासे हम यह रमत पूर्ण कर सकेंगे? उसका समाधान श्रीवल्लभाचार्य दें रहें है।

५ तदेवैतत्प्रकारेण भवतीति श्रुतेर्मतम्।
द्विरूपं चापि गंगावज् ज्ञेयं सा जलरूपिणी॥

तत्	एव	एतत्	प्रकारेण	भवति	इति	श्रुतेः	मतम्
वो	ही	इस	प्रकारसे	हूए है	ऐसा	वेदका	मत है

द्विरूपम्	च	अपि	गंगावत्	ज्ञेयम्	सा	जलरूपिणी
दो रूपसे	और	भी	गंगाकी भाँति	जानने योग्य	वोही	जल स्वरूपाको

श्रुतेः मतम् द्विरूपम् इति। एतत् प्रकारेण तत् एव भवति। (दृष्टांतः)
सा अपि ज्ञेयम् गंगावत् (देवीवत्) च जलरूपिणी (प्रवाहवत्)॥

श्रुति.. वेदमत अनुसार, द्विरूप.. दो रूप है ऐसा (सिद्ध होता है।) इसी प्रकारसे वो (परमात्मा) ही (द्विरूप) हूएँ है। (दृष्टांत देतें है कि) वो जाननेंमें आता है, (जैसे) गंगा देवीकी भाँति और जल स्वरूप धारण कीये हूए (गंगाजी)।

तात्पर्य ः जो श्रुतिका.. वेदका मत है वो ही आचार्यश्रीने कहा है, यही पूर्ण सत्य है, दूजे आंशिक सत्य है। जैसे हाथी स्तंभ जैसा है पर आंशिक सत्य है, जहाँ उसके पैर है वहाँपर! अखिल हाथी नहीं।

अविकल्पनीय भगवान ही एक विलक्षण रूपसे है और दूसरा ब्रह्मरूप धारण करके प्रवर्तमान है। ब्रह्म इसी जगतका निमित्त और उपादान कारण भी है। यह दृष्यमान-अदृष्यमान ब्रह्मांड.. जगत उसमें ही प्रतीत होता है। ईशावास्यं इदं सर्वम्! ईश्वरके एक छोटेसे अंशरूप ब्रह्मांडका ताग नहीं मिलता वहाँ, अखिल भगवानको कहाँसे जान सकेंगे?

यहाँ गंगाजीका दृष्टांत देतें है। जैसे गंगाजी दृष्ट स्वरूपसे जलवत है और अदृष्ट देवी स्वरूपसे है ही; वैसे ब्रह्मरूपसे विश्वव्याप्त होकर भी अव्यक्त, अचिंत्य, अविज्ञेय स्वरूपसे भगवान भी विद्यमान है ही। दूजा, जलसे गंगाजी नहीं, गंगाजी है तो जल है वैसे, ईश्वरसे सचराचर सृष्टि है। ईश्वर कोई मानवमनकी कल्पना नहीं.. मानवसर्जित नहीं है! कुछ लोग ऐसा मानतें है। क्या है कि वहाँतक पहोंचनेकी हमारी योग्यता नहीं है। जहाँ ब्रह्मका ज्ञान नहीं वहाँ भगवान तो बहोत दूरका विषय है! यह सिद्धांत कौन समझ सकेगा? वो ही जिनका थोडा बहोत उपनिषदों या आध्यात्मिक क्षेत्रमें अभ्यास है, अभिरुचि है।

६ महात्म्यसंयुता नृणां सेवतां भुक्तिमुक्तिदा।
मर्यादामार्गविधिना तथा ब्रह्मापि बुद्ध्यताम्॥

महात्म्य-संयुता	नृणाम्	सेवताम्	भुक्ति-मुक्तिदा
महात्म्यसे युक्त	मनुष्योंको	भक्तोंको	भोग व मोक्ष देनेवाले

मर्यादा-मार्ग-विधिनाम्	तथा	ब्रह्म	अपि	बुद्ध्यताम्
मर्यादा मार्गी.. रूढीगत विधिपूर्वक	तथा	ब्रह्मरूप	भी	जानों.. समझो

मर्यादामार्ग विधिनाम् सेवताम् नृणाम् (अपि) माहात्म्य संयुता (गंगा) भुक्तिदा-मुक्तिदा (भवति)। तथा ब्रह्म अपि बुद्ध्यताम्॥

मर्यादामार्गी.. परंपरागत वैदिक विधियोंवाले, सेवकों.. भक्तजन (परंतु सकाम) मनुष्योंको, महिमायुक्त (गंगादेवी) सुख-भोग और दुःख-मोक्ष देनेवाले होतें है। वैसे (इसी दृष्टांत अनुसार सर्वात्मक) ब्रह्मको समझें.. जानें।

तात्पर्य : यदी गंगा मात्र नदी होती, मात्र पाणी होती तो कौन पूजा करेगा? हजारों वर्षोंसे गंगाजी भक्तजनोंको सुखभर्ता दुःखहर्ता हूई है, वो ही सिद्ध करता है कि वो देवी या ब्रह्म स्वरूपसे है ही। विषय मात्र श्रद्धाका नहीं है, विधिवत् शास्त्रीय पूजनका भी है। मानता या बाधा है क्या? मानता.. मान्यता जो श्रद्धाका विषय है और बाधा.. बाध्यता.. बंधन यह विधिका क्षेत्र है। यहाँ विज्ञान है, बंधनसे शक्ति निर्माण होती है और यदि बंधनका प्रतिज्ञापूर्वक पालन हो तो, उस निर्मित शक्तिका देव-देवी प्रसन्न होकर, जो चाहें इच्छित फल देंगे।

कोई भी देव-देवी मूलतः ब्रह्मरूपसे ही है। वे फल देंगे उसमें भगवानका ही आदेश होगा। इसलिये तो भगवानको जीवन सोंपकर ही जीना चाहिये। फिर भी मान लो किसीने देवीसे बेटा माँगा; मानता रखी.. बाधा बाँधी! अब, देवी तो जानती ही है भाग्यमें है या नहीं! विधिसे प्रसन्न होकर भाग्यमें न होगा तो भी देगी, पर वो लोन.. उधार लेने जैसा होगा! पहले फल ले लिया, अब कर्म करनें होंगे! यदि ऐसा न हूआ, बंधन चूक गयें तो प्रकृति छोडेगी नहीं। उससे वो याचक दुःखी होगा वैसे बेटा भी दुःखी रहेगा। करने चलें थे सुख, हो गया दुःख!

कर्म भी एक मायाजाल ही है, इसलिये भगवद् शरण! एक मात्र उपाय! उसकी इच्छा अनुसार ही जीना चाहिये! प्रभु ही इसी कर्मबंधनोंसे छूडवायेंगे।

७ तत्रैव देवतामूर्तिर् भक्त्या या दृश्यते क्वचित्।
गंगायां च विशेषेण प्रवाहाभेदबुद्धये॥

तत्र	एव	देवतामूर्तिः	भक्त्या	या	दृश्यते	क्वचित्
वहाँ	ही	मूर्तिमंत स्वरूप	भक्तिपूर्वक	जो	दिखता है	कभी ही, किसीको

गंगायाम्	च	विशेषेण	प्रवाह-अभेद-बुद्धये
गंगादेवीमें	और	विशेषरूपसे	प्रवाहमें अभेद बुद्धिसे

या गंगायाम् विशेषेण (ज्ञानेन) च प्रवाह-अभेद-बुद्धये (पुष्टि-बुद्धये), तत्र एव क्वचित् भक्त्या दृश्यते देवतामूर्तिः॥

जो गंगाजीमें विशेषरूपसे.. ज्ञान होनेसे और उनके पानीके प्रवाहमें भेदभरहित (पुष्टि.. शुद्ध सात्त्विक, जिनको देवी और नदीमें भेद नहीं वैसी) बुद्धिसे वहाँ ही, कभी.. किसीको, भक्तिभावसे मूर्तिमंत देवी.. प्रत्यक्ष गंगाजीका दर्शन होता है।

तात्पर्य ः यदि परिशुद्ध जीवन होगा, गंगाजी प्रति निष्काम भक्तिभाव होगा और योग्यता होगी तो, गंगाजी प्रगट होकर दर्शन देंगे इसमें कोई शंका नहीं है। इतना ही नहीं, वो गंगाजीको तत्त्वरूपसे भी जान लेगा! वो ही कह सकतें है कि, गम्यते.. प्राप्यते भगवत्पदं येन सा गंगा! जिस गंगाका प्रवाह बहार बहता है वैसा ही प्रवाह मेरी अंदर बहता है; उसी दिव्य प्रवाहको ही प्रेमप्रवाह कहा है। इस प्रेमप्रवाहको जो जान लेता है, उसने ही सच्चा गंगास्नान किया है!

ऐसे गंगातत्त्वकी अनुभूति हो तो दर्शन शक्य है। अन्यथा जो कहा है, गंगा स्नानात् मुक्तिः। क्या गंगामें जो स्नान करें उन सबको मुक्ति मिल जायेगी? स्नानके हेतु भिन्न रहेंगे ही! कोई आनंदके लिये, कोई देहशुद्धिके लिये, कोई विधि हेतु तो कोई पापनिवारण हेतु स्नान करतें होंगे। कोईक ही पुण्यकर्मका उदय समझकर, गंगास्नानका सौभाग्य समझकर या कृपा समझकर स्नान करता होगा। उसका विकास होगा, उसमें ही भक्तिभाव जगेगा! अंतमें कभी दर्शनलाभ भी पायेगा।

आचार्यश्री कहतें है, गंगाजी जैसे ब्रह्म स्वरूपा है, दर्शन दे सकतीं है, भला कर सकतीं है; वैसे ब्रह्मको भी जानों! वो निर्गुण निराकार है वैसे सगुण साकार भी है ही। वो अपनी तत्त्व उपासना पर निर्भर है। जब बाह्य भौतिकतत्त्व, शक्तिरूप दैवीतत्त्व और आत्मिकतत्त्व एकरूप लगेंगे तभी दर्शन होगा!

८ प्रत्यक्षा सा न सर्वेषां प्राकाम्यं स्यात्तया जले।
विहिताच्च फलात् तद्धि प्रतीत्यापि विशिष्यते॥

प्रत्यक्षा	सा	न	सर्वेषाम्	प्राकाम्यम्	स्यात्	तया	जले
दिखते	वो	नहीं	सभीको	कामनापूर्त	हों	उसीसे	जलमें

विहितात्	च	फलात्	तत्	हि	प्रतीत्या	अपि	विशिष्यते
योग्यतासे	और	फलपूर्वक	वो	क्योंकि	प्रतीति	भी	विशेष होंगी

सा (गंगा) सर्वेषाम् न प्रत्यक्षा.. न दर्शयात्। तत् विहितात् च फलात् हि प्राकाम्यम् स्यात्, तया जले अपि प्रतीत्या विशिष्यते॥

वो (गंगाजी) सर्वको.. हरेकको प्रत्यक्ष नहीं होतें.. दर्शन नहीं देतें। वो योग्यतापात्र और (कर्म या भक्तिके) फलके प्रतापसे ही, (दर्शनकी) कामना पूर्ति करतें है। (प्राकाम्य नामकी एक सिद्धि है, वो देवी-देवताओंके द्वारा पूर्ण होती है।) इसलिये जलमें भी (देवीकी) प्रतीति विशेषरूपसे होती है।

तात्पर्य ः गंगाजी हो या अन्य देवी-देव, उनकी भक्ति क्यों करतें है? यह प्रश्न अपने आपको पूछना चाहिये! सुखोंकी भुक्ति हेतु या दुःखोंकी मुक्ति हेतु? जीवनके विकास हेतु? या जीवननी परिपूर्णता.. मोक्ष हेतु? देव-देवी सब करेंगे! यदि उद्देश सांसारिक बाबत होगा तो काम्यपूर्ति करेंगे, शुद्धि या दर्शन नहीं देंगे। पर दैवी या पारमार्थिक उद्देश होगा तो प्राकाम्यपूर्ति करेंगे! उसमें भक्ति और योग्यता देखेंगे, परीक्षा भी होगी! पश्चात् विशेष प्रतीति या दर्शनका लाभ मिल सकता है।

देवी देवता भी ब्रह्मके ही स्वरूप है, और भगवान भी उनके साथमें विशेषरूपसे है जैसे हमारे साथें है। हो सकता है कभी देहधारी मनुष्य हो और ब्रह्म प्राप्ति करके मुक्त हूए हों! अथवा ब्रह्मरूपसे ही भगवान जो कार्य दें उसमें संलग्न हूए हों! वे सगुण निराकार है, अपने ब्रह्मस्वरूपसे विचलित नहीं होतें और प्रभुके दिये हूए प्राकृतिक कार्योमें अविरत मग्न रहतें है। देवताएँ कर्मयोगका पूर्ण परिपालन करतें है, उसमें कोई चूक नहीं होती।

अब जिनकी भक्ति फलीभूत हुई है, उनको देव या देवी दर्शन देतें है, यह चमत्कार नहीं है। आचार्यश्रीको उसका अनुभव है; यमुनाष्टकमें यमुनाजी और गंगाजीका दर्शन उसका प्रमाण है।

९ यथा जलं तथा सर्वं यथा शक्ता तथा बृहत्।
यथा देवी तथा कृष्णस् तत्राप्येतदिहोच्यते॥

यथा	जले	तथा	सर्वम्	यथा	शक्ता	तथा	बृहत्
जैसा	जलरूप	वैसा	सर्व विश्वरूप	जैसी	शक्तिरूप	तैसा	ब्रह्मरूप

यथा	देवी	तथा	कृष्णः	तत्र	अपि	एतत्	इह	उच्यते
जैसी	तत्त्वरूप देवी	तथा	श्रीकृष्ण	वहाँ	भी	वो	यहाँ	कहतें है

यथा जलम् तथा सर्वम् (भौतिकम्), यथा शक्ता तथा बृहत् (दैविकम्), यथा देवी तथा कृष्णः (आत्मिकम्)। तत्र (गंगायाम् अस्ति), एतत् इह (देहे आत्मा) अपि उच्यते॥

जैसा जलरूपसे है, वैसा सर्व (जगतरूपसे, भौतिक है.. यह सर्वका उपादान कारण ब्रह्म है)। जैसे शक्तिस्वरूपा.. जैसेकि गति शक्ति, जीवन शक्ति (वह दैवत् है, ब्रह्म इसका निमित्त कारण है और) जैसे देवी.. प्रगट हूए गंगाजी है, वैसे ही श्रीकृष्ण है। वहाँ देवी.. गंगाजी (दृष्टांतरूप है) वोही इस (देहमें) भी कहलातें है।

तात्पर्य ः गंगाजीके दृष्टांतथसे 'जो पींडे वो ब्रह्मांडे' यह सिद्धांत दिखाया है। ये ही वातें गीताजीमें विविधतासे कही है; जगत-जीव-ईश्वर इन रूपोंको, सातवें अध्यायमें पराप्रकृति-अपराप्रकृति-प्रभु नामसे कहें है, तेरवें अध्यायमें क्षेत्र-क्षेत्री-क्षेत्रज्ञ नामसे और पंदरवें अध्यायमें क्षरपुरुष-अक्षरपुरुष-पुरुषोत्तम नामसे दर्शित है। वे ही मूलमें, उपादान ब्रह्म-निमित्त ब्रह्म-परंब्रह्म है, जिसमें निमित्त ब्रह्म ही जीवरूप हूआ है।

सृष्टिका प्रत्येक चैतन्य यह निमित्तब्रह्म है। उसमें देव पूर्ण चैतन्य.. दिव्यब्रह्म है, असुर या दानव विपूर्ण अर्थात् ब्रह्मकी भ्रांत समझमें है, जैसे कि ईश्वरोऽहं अहं भोगी! और जिनको जीव कहते है वो हम अपूर्ण ब्रह्म है। अशुद्ध होनेसे जीवकी उपाधी है, हमको भवरोग लगा है इसलिये घूमतेंरहतें है! जीव जब पूर्ण ब्रह्मरूप होगा तभी देवतुल्य ही होगा, महापुरुष इसलिये तो पूजे जातें है। प्रत्येक जीवके साथ, चैतन्यके साथ परमात्मा रहतें है परंतु उनकी अवस्था.. पदवी भिन्न है। उपद्रष्टा से परमात्मा तककी उनकी स्थिति है (गीता १३.२२), ऐसे प्रत्यग ब्रह्मके साथ परंब्रह्म तत्त्व है ही।

१० जगत्तु त्रिविधं प्रोक्तं ब्रह्माविष्णुशिवस्ततः।
देवतारूपवत्प्रोक्ता ब्रह्मणीत्थं हरिर्मतः॥

जगत् तु	त्रिविधम्	प्रोक्तम्	ब्रह्मा-विष्णु-शिवः	ततः
जगत भी	तीन रूपस	कहा गया है	ब्रह्मदेव, विष्णुदेव, महादेव	तभी

देवता-रूपवत्	प्रोक्ता	ब्रह्मणि	इत्थम्	हरिः	मतः
देव स्वरूपसे	कहे गयें है	ब्रह्ममें	ऐसे	श्रीभगवानके	मतसे

तु जगत् त्रिविधम् (उत्पत्ति, स्थिति, लयम्) प्रोक्तम्। ततः ब्रह्मणि देवतारूपवत्, ब्रह्मा-विष्णु-शिवः प्रोक्ता। इत्थम् हरिः मतः॥

अब जगत त्रिविध कहा गया है (उत्पत्ति, स्थिति, लयरूप)। इसलिये ब्रह्ममें देवस्वरूप, ब्रह्मा-विष्णु-महेश कहे गयें है। इस प्रकार हरि.. श्रीभगवानका (भगवद्गीतामें) मत है.. अभिप्राय है.

तात्पर्य ः हमारी समज हेतु आचार्यजीने गंगाजीका दृष्टांत दिया। अब इसी वातको ज्यादा सूक्ष्म करके भगवान विषयक मत दर्शातें है। एकोऽहम् बहुस्याम्! इसमें बहु अर्थात् तीन या तीनसे ज्यादा। भगवान बृहद् होनेसे, ब्रह्मके प्राथमिक तीन रूप तत्त्वरूपसे प्रगट हूए! ब्रह्मा-विष्णु-महेश। वेदोमें जगतको त्रिमूर्ति कहतें है कारण, ब्रह्मांडके तीन मूलभूत तत्त्व.. उत्पत्ति-स्थिति-लय या सभीके कर्ता-भर्ता-हर्ता। गीतामें उनको ही प्रभविष्णु-भूतभर्तु-ग्रसिष्णु (१३.१६) कहे गयें है। सृष्टिके प्रत्येक कणमें.. अस्तित्व मात्रमें ये तीन रहें है, जिनको आजका विज्ञान इलेक्ट्रोन-प्रोटोन-न्युट्रोनसे जानता है। ब्रह्मत्वकी जीववृत्ति, प्रवृत्ति और निवृत्ति भी इन तीनोंसे ही है। वे पूर्णब्रह्म ही है पर कार्यगत क्षेत्रसे भिन्न है।

श्रीभगवानने गीतामें स्पष्टरूपसे बारीबारी कहा है कि सृष्टिके सभी कारणोंका कारण मैं हूं। सर्वका प्रभव-निधान-प्रलय.. सर्ग-निसर्ग-विसर्ग मैं हूं। सर्व वृत्तियाँ, प्रवृत्तियाँ या निवृत्तियाँ मुझसे ही है।

हम रहें बालविद्यालयके विद्यार्थी और यह महाविद्यालयका अभ्यासक्रम! फिर भी आचार्यश्रीने सरलतासे समझाया कि श्रीकृष्ण अर्थात् परंब्रह्म.. भगवानके अवतार! नहीं कि त्रिदेवोमेंसे किसी एकका! श्रीकृष्ण ही तीनोंके अंशी है! इसलिये विष्णुके अवतार कृष्ण नहीं है, कृष्ण भगवानके अंश विष्णुदेव है।

११ कामाचारस्तु लोकेऽस्मिन् ब्रह्मादिभ्यो न चान्यथा।
परमानन्दरूपे तु कृष्णे स्वात्मनि निश्चयः॥

कामाचारः	तु	लोके	अस्मिन्	ब्रह्मा-आदिभ्योः	न	च	अन्यथा
व्यवहार	तो	लोकमें	इसी	ब्रह्मा आदि द्वारा	नहीं	कि	अन्य रीतसे

परमानन्दरूपे	तु	कृष्णे	स्व-आत्मनि	निश्चयः
परम आनंद स्वरूप	सचमें	कृष्णमें	अपने चित्तमें	निश्चय करें

तु अस्मिन् लोके काम-आचारः (प्रतिव्यवहारः) ब्रह्मा आदिभ्योः.. देवभ्योः (प्रवर्तन्ते) न च अन्यथा। तु परमानन्दरूपे (परंब्रह्मे.. भगवते) कृष्णे, स्वात्मनि निश्चयः॥

वास्तवमें इस लोकके कामाचार.. सर्व व्यवहार, ब्रह्मा (विष्णु, महेश आदि देव द्वारा ही होतें है), नहीं कि अन्य कोई रीतसे। सचमें परम आनंदरूप (परंब्रह्म.. भगवान..) श्रीकृष्ण, अपने अंतरमें 'आत्मा' रूपसे (विद्यमान है ऐसा) निश्चय करना है.. भावना करनी है।

तात्पर्य ः सभी जीवकी मोटरगाडी! याद हैना! यह स्वयं संचालित कार है! ब्रह्म अर्थात् प्रकृति ही चलाती है। जीवकी सवारी है और उसे लगतो है, मैं चलाता हूं! मुझे यहाँ जाना है, वहाँ जाना है! कहाँ कहाँ भटकता है! उसे जाना है मात्र सहयात्री तक! जीव जहाँ तक रागमार्गी है.. प्रकृतिमें रममाण है, वहाँ तक हरिसे विमुख है, जो साथमें ही है पर उसकी ओर ध्यान नहीं है।

और देह सर्जनसे लेकर प्राप्ति, प्रवृत्ति, तुष्टि, पोषण, रक्षण, वर्धन, निवृत्ति, गति, निवारण, लय.. विसर्जन आदि सभी कार्य देवोंके द्वारा अर्थात् प्रकृति द्वारा ही होतें है। जीव.. देहीके नामसे देहमें मात्र भोग भुगतता है, इसलिये बंदी है! जब वो इस प्रवृत्तिसे उपरत होगा तभी उसका ध्यान आत्माकी ओर जायेगा!

आचार्यश्री कहतें है, जो साथ है वो विलक्षण तत्त्व, जिसे आत्मा कहतें है, जो श्रीकृष्णके नामसे प्रसिद्ध है, वो सभीके अंतर्यामिन् भी है! उस परंब्रह्म तत्त्व तक पहोंचनेका निश्चय करना चाहिये। साथ ही है पर जानें कितने दूर हूए है! क्योंकि चित्त मलिन है.. अंतःकरण अशुद्ध है! इसलिये सौ प्रथम, ध्यान मात्र श्रीकृष्णमें लगाना होगा, चित्त सबमेंसे हटाना होगा! यह भक्तिका प्रथम सोपान है!

१२ अतस्तु ब्रह्मवादेन कृष्णे बुद्धिर्विधियताम्।
आत्मनि ब्रह्मरूपे हि छिद्रा व्योम्नीव चेतनाः॥

अतः	तु	ब्रह्मवादेन	कृष्णे	बुद्धिः	विधियताम्
इसलिये	अवश्य	ब्रह्मवादसे	कृष्णमें	बुद्धि	स्थापकर

आत्मनि	ब्रह्मरूपे	हि	छिद्राः	व्योम्नि	इव	चेतनाः
आत्ममें	ब्रह्मरूपसे	क्योंकि	छेद	आकाशमें	जैसे	चैतन्य

हि (यथा रात्रौ तारकाः दृश्यन्ति) व्योम्नि छिद्राः इव, (तथा) आत्मनि ब्रह्मरूपे चेतनाः (बोधयन्ति)। अतः तु कृष्णे ब्रह्मवादेन बुद्धिः विधीयताम्॥

क्योंकि (जैसे रात्रीमें सितारें) आकाशरूपी चद्दरमें लगे छिद्रोंकी भाँति दिखाई देतें है, (वैसे) आत्ममें ब्रह्मरूपसे चैतन्य.. (सर्व जीव समूहोंका बोध होता है।) इसलिये अवश्य श्रीकृष्णमें, ब्रह्मके सिद्धांतसे बुद्धि लगानी चाहिये।

तात्पर्य ः नरसिंह महेता कहतें है, 'जागकर देखुं तो जगत दिसे नहीं, नींदमें अटपटे भोग भासे!' जगत समग्र रात्रीका ही आभास है! जैसे दिन होनेसे आकाश स्पष्ट होता है वैसे, आत्माका प्रकाश होनेसे जीवको स्वयं ही ब्रह्म स्वरूपका साक्षात्कार होता है और जीव-आत्माका द्वैतभाव प्रत्यक्ष होता है। इसलिये श्रीकृष्णमें बुद्धि लगानेका हेतु है; चित्त निर्मल हो, शुद्ध कर्मोंसे सात्त्विकताकी पुष्टि हो, सर्व बंधन छूटे और ब्रह्मकी अनुभूति हो। इसके बाद ही कृष्णकृपासे आत्मसाक्षात्कार होगा, अद्वैतानुभूति होगी।

चौदलोकमें कोई भगवानकी समकक्ष नहीं तो उनसे पर.. बढकर कौन हो सकेगा? सभी उनका ही ध्यान धरतें है! ब्रह्मा तो कमलासनस्थ होकर ध्यान धरें ही जा रहें है। श्रीविष्णु सोते हुए किसका ध्यान धरतें है? और शिवजी एकांतमें, हिमालय पर तपस्वी होकर किसका ध्यान धरतें है? सभी वो.. परमस्रष्टा, परमात्मा, विराट स्वराट, परमेश्वर, उत्तमपुरुष, भगवानमें लीन.. समाधिस्थ है।

हमको भी भगवानके वो एकमात्र पूर्णावतारमें तल्लीन रहेना चाहिये। श्रीकृष्णको जानें, पहचानें, समझें और फिर ध्यान धरें! आचार्यश्रीने जो ब्रह्मबुद्धि समझायी है, उसीसे ही परंब्रह्मका ध्यान धरना चाहिये।

१३ उपाधिनाशे विज्ञाने ब्रह्मात्मत्वावबोधने।
गंगातीरस्थितो यद्वद् देवतां तत्र पश्यति॥

उपाधिनाशे	विज्ञाने	ब्रह्म-आत्मत्व	अवबोधने
जीव-उपाधि नाशसे	अनुभव ज्ञानसे	स्वयं ब्रह्मतत्त्वका	पुनः बोध होनेसे

गंगातीरस्थितः	यत् वत्	देवताम्	तत्र	पश्यति
गंगातटपर खडा	जिस प्रकार	गंगादेवीको	वहाँ	देखें.. दर्शन करें

यद्वत् गंगातीरस्थितः (योग्य सेवकः) तत्र देवताम् पश्यति। (तद्वत् जीवः) उपाधिनाशे विज्ञाने, अवबोधने ब्रह्म (तत्त्व.. ब्रह्म-स्वरूपः) आत्मत्व (स्वयमेव पश्यति)॥

जिस प्रकार गंगातटपे खडा (योग्य भक्त) वहाँ देवी स्वरूपमें (प्रत्यक्ष गंगाजीको) देखता है.. दर्शन करता है। उसी प्रकार (ही जीव उसकी जीवरूप) उपाधिका नाश होनेसे, विज्ञानसे.. अनुभूति द्वारा, पुनःबोधन.. स्मरण होनेसे ब्रह्म (तत्व.. ब्रह्म स्वरूपे) आत्मत्व (स्वयंको ही देखता है।)

तात्पर्य ः भक्तकी कितनी ही परीक्षाएँ, तपश्चर्याएँ, कर्मोंके पश्चात् उसकी भक्ति और कर्मफल अनुरूप देवी-देवताएँ दर्शन देतें है। उसी प्रकार कितने ही जीवनभरके प्रयत्न, योगसाधनाओं पश्चात् परिशुद्ध होते ही जीव पुनः ब्रह्मत्वको प्राप्त होता है.. अहं ब्रह्मास्मिकी अनुभूति करता है। उसके विविधमार्ग है, वहाँ भक्तिमार्ग उत्तम है! ज्ञानराणा आचार्य शंकर भी भक्तिकी महिमा करते है कि, मोक्षकारण सामग्र्यां भक्तिरेव गरियसि! मोक्षप्राप्तिकी सामग्रीमें भक्ति ही श्रेष्ठ है!

ब्रह्म तो स्वयं शुद्ध है, वो कैसे अशुद्ध हुआ? क्वचित् यही ईश्वरकी माया है! ब्रह्मांशको द्वैतका आनंद लेनेकी.. खेलनेकी इच्छा हुई! पर खेलते हुए खेलनेकी वस्तुएँ ही आनंद हो जाय तो? वो राग कहेलायें! आनंद स्वरूप था, अब विषय आनंदप्रद लगें इसलिये फसाया, जीवरूप हुआ! अब जहाँ तक रमत पूर्ण न हो जाय वहाँ तक बहार नहीं आ सकता! रमत पूर्ण कब होगी? दूसरें जीवोंके ऋणका भूगतान हो जाय तब तक! इसलिये कहा है, जीवो जीवस्य जीवनम्! दूसरे जीवोंका जीवन बनेगा तो मुक्त होगा, दूसरोंके जीवन पर जियेगा तो बँधता जायेगा! और रमत यानी रमत! इसमेंसे भगवान भी नहीं छुडावें! रमता जा!

१४ तथा कृष्णं परंब्रह्म स्वस्मिन् ज्ञानी प्रपश्यति।
संसारी यस्तु भजते स दूरस्थो यथा तथा॥

तथा	कृष्णम्	परंब्रह्मम्	स्वस्मिन्	ज्ञानी	प्रपश्यति
वैसे ही	श्रीकृष्णको	परंब्रह्मको	अपनेमें	ज्ञानीभक्त	देखता है

संसारी	यः	तु	भजते	सः	दूरस्थः	यथा	तथा
संसारासक्त	जो	परंतु	भजता है	वह	दूर खडा	जैसे	तैसे

तथा ज्ञानी(भक्तः ब्रह्मरूपः) परंब्रह्म कृष्णम् (आत्मस्वरूपम् विलक्षणम् ज्ञातुम्) स्वस्मिन् प्रपश्यति। तु यः (तटेन्) दूरस्थः सः संसारी (संसारासक्तः प्रवाहमार्गी) यथा तथा भजते॥

वैसे ही ज्ञानी (ब्रह्मरूप हुआ वो ज्ञानीभक्त) ब्रह्मसे परम श्रीकृष्णको (आत्म स्वरूपमें रहे विलक्षणतत्त्वको जानकर) स्वयंमें ही देखता है। परंतु जो दूरीभाव रखकर.. दूर किनारे पर ही रहता है वो संसारी (प्रवाहमार्गी मानव) जैसे तैसे भजता है। (परंपरासे मानने है या पूजने है इसलिये भजता है।)

तात्पर्य ः आचार्यश्री अनुभूतिसे कहतें है कि वैसे ब्रह्मस्थ हुए ज्ञानीभक्त, भगवत्कृपासे ही परंब्रह्म.. ब्रह्मके अंशीको, अपनेमें आत्मा स्वरूपसे दर्शन करता है। यह महापुरुषोंका अनुभव है, अपरोक्षानुभूति है!

जैसे गंगाजीका भक्त समीप आते ही दर्शन पाता है, जब कि तट पर वर्षोंसे धंधा करता हुआ व्यापारी, भक्तिभावके अभावमें जीवन व्यर्थ गँवाता है। वो व्यापारी, टीलें-टपकें करेगा, गंगाजीका जय करेगा, बडा भक्त हो वैसा आडंबर करेगा कारण, धंधा करना है! व्यापारका आधार गंगाजी है! अंदरसे गंगाजीके लिये कुछ नहीं है। इसलिये दूरस्थ कहा! तट पर है, पर अंदरसे बहोत दूर है!

ऐसे लोग प्रवाहमार्गी है, मर्यादामार्गी हो तो भी थोडा विकास हो पर, तामसिक तो डूबेगा ही! ऐसा ही श्रीकृष्ण प्रति है। संसारी भजतें है कारण, संसार सुखरूप चलाना है। भगवानको मानतें है, कुछ उलटपूलट न हो इसलिये! परंतु वे संसारी दूरस्थ ही है! श्रीकृष्णको मात्र ज्ञानीभक्त ही पहचानेगा और पूर्णरूपसे भजेगा। गीताजी और आचार्यश्रीके मतानुसार वो भगवानसे और भगवान उसीसे दूर नहीं। दूर हो सकते नहीं!

१५ अपेक्षितजलादीनाम् अभावात्तत्र दुःखभाक्।
तस्मात्श्रीकृष्णमार्गस्थो विमुक्तः सर्वलोकतः॥

अपेक्षित-जल-आदीनाम्	अभावात्	तत्र	दुःखभाक्
आवश्यक जल आदिके	अभाव होनेसे	वहाँ	दुः‍ख.. कष्ट होता है

तस्मात्	श्रीकृष्णमार्गस्थः	विमुक्तः	सर्वलोकतः
इसलिये	श्रीकृष्णको मार्गमें स्थित	संपूर्ण मुक्त है	सर्व लोकमेंसे

(यत्र) अपेक्षित जल आदीनाम् अभावात् तत्र (तृप्तिः अभावात्) दुःखभाक्। तस्मात् श्रीकृष्ण-मार्गस्थः (योगमार्गे स्थितः पुष्टः) सर्वलोकतः विमुक्तः॥

(जहाँ) आवश्यक जल-भोजन आदिका अभाव हो वहाँ (उस रास्तेमें अतृप्तिसे) दुःख.. यातना होती है। इसलिये जो श्रीकृष्णके मार्गमें स्थित है.. श्रीकृष्णके बतायें हुए मार्ग पर चलता हुआ वो पुष्टजीव, सर्वलोकमेंसे मुक्त होता है।

तात्पर्य ः यात्रामें भोजन-पाणीकी व्यवस्था साथमें रखनी होती है। उनके अभावसे कितना कष्ट होता है उसका अनुभव सभीको होगा! आज तो पहलेसे ही सभी व्यवस्थाएँ हो जाती है। यात्रामां कोई यातना ही नहीं! आचार्यश्री श्रीकृष्णके मार्गकी वात करतें है, वहाँ कौनसे आहार-पानी चाहिये?

जीवका सर्वस्व संसार है। जीवके राग या मोह, आसक्ति या अनुरक्ति, वृत्ति या प्रवृत्ति... उन सबका केन्द्र संसार.. विषय या भोग है! जीवका मन एकबार इस केन्द्रको बदल दें तो नैया पार! आचार्यश्री कहतें है ऐसे, केन्द्रमें श्रीकृष्णको ले आयें बादमें देखें! वे सब.. राग और आसक्ति अब संसारको भूलकर भगवानके पीछे दौडेंगे! कोई आहार-पानी बदलनेकी आवश्यकता नहीं है, श्रीकृष्णके मार्गमें सभी वो ही है, मात्र दृष्टि बदलनेसे सृष्टि बदल जायेगी! पर ये सब अंदरसे होगा! कदाचित् बहारसे तो किसीको पता भी न चलें!

श्रीकृष्णात्परंतत्त्वमहं न जाने! ऐसे श्रीकृष्णका मार्ग कहाँ पहोंचाता है? जहाँ कोई लोक ही न हो वहाँ! यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम! (गीता १५.६) जहाँ जाकर वापस आना ही नहीं होता, उस धामके नित्य निवासी हो जातें है! इसलिये निष्कामभावसे श्रीकृष्णके मार्गपर चलना है एसा श्रीवल्लभका सिद्धांत है।

१६ आत्मानन्दसमुद्रस्थं कृष्णमेव विचिन्तयेत्।
लोकार्थी चेद्भजेत्कृष्णं क्लिष्टो भवति सर्वथा॥

आत्मानन्द-समुद्रस्थम्	कृष्णम्	एव	विचिन्तयेत्
आत्मानंदके समुद्रमें स्थित होकर	कृष्णको	ही	नित्य स्मरने चाहिये

लोकार्थी	चेत्	भजेत्	कृष्णम्	क्लिष्टः	भवति	सर्वथा
लोकसुखके लिये	जो	भजता है	कृष्णको	क्लेश	होता है	सर्वथा

(तस्मात्) आत्मानन्द-समुद्रस्थम् कृष्णम् एव विचिन्तयेत्। (तु)
चेत् लोक-अर्थी कृष्णम् भजेत्, सर्वथा क्लिष्टः भवति॥

(इसलिये) आत्मानंदके समुद्रमें स्थित.. सर्वानंद स्वरूप श्रीकृष्णका ही चिंतन हो, (मन-बुद्धिसे भगवद्रूपका ही स्मरण हो, परंतु) जो लोकेषणा या लौकिकताके लिये श्रीकृष्णको भजतें है.. पूजतें है (उसको) सभी ओरसे क्लेश.. कष्ट होता है।

तात्पर्य : भगवानके पासे तो सभी जाय! दुःखी या आर्त जाय, याचक या मांगण जाय, भक्त जाय वैसे ज्ञानी भी जाय! सबको लाभ मिले! तो आचार्यने ऐसा क्यों कहा कि लौकिकताके लिये जाय उसे क्लेश होता है! कारण है...

यहाँ फिरसे शरणरहस्यके शरणभावका स्मरण करें! हम किसकी शरणमें है? भगवानकी या संसारकी! संसारमें रहेकर भगवानका शरण हो सकें पर भगवान समीप जाकर संसारका शरण माँगे? प्रभु! मेरा संसार सुखी करो! ऐसी क्षुल्लक मांगणी होगी? कौन है सामने? जो सुवर्ण देने बैठे है उनको कहतें है मुझे मीट्टी या पित्तल दो! पूर्णानंद देनेवालेको कहतें है कि मुझे क्षणिक आनंद दो! कैसा लगे? भगवानको कुछ लगे न लगे पर साथमें है उस प्रकृतिदेवीको नहीं जचेगा!

बीचमें कितनें ही देव-देवी है, संसारसुख उनसे मांगो, भगवानसे नहीं। एक आदमीने कठीन प्रयाससे वडाप्रधानका समय लिया, तीन मिनिट मिली! समय मांगा था गांवके विकास हेतु, जाकर कहता है मेरी पत्नीका बहोत त्रास है, आप कुछ किजीये! वडाप्रधान तो कुछ नहीं बोले पर, संत्रियोंने तुरंत बहार निकाला और धो डाला अलगसे!

हम भी ऐसा ही करतें है, इसलिये आचार्य जैसे संत्री कहतें है, श्रीकृष्णका विशेषरूपसे चिंतन करो, मानसीपूजा करो! वो देवोंके देव है, सर्वाधीश है!

१७ क्लिष्टोऽपि चेद्भजेत्कृष्णं लोको नश्यति सर्वथा।
ज्ञानाभावे पुष्टिमार्गी तिष्ठेत्पूजोत्सवादिषु॥

क्लिष्टः	अपि	चेत्	भजेत्	कृष्णम्	लोकः	नश्यति	सर्वदा
क्लेशयुक्त	भी	यदि	भजे	कृष्णको	भव	नष्ट होगा	सर्वदा

ज्ञान-अभावे	पुष्टिमार्गी	तिष्ठेत्	पूजा-उत्सवा	आदिषु
ज्ञानके अभावमें	पुष्टिमार्गीको	रहेना है	पूजा या उत्सव	आदिमें

(तु) क्लिष्टः अपि चेत् कृष्णम् भजेत्, सर्वथा लोकः नश्यति (मुक्ति भवेत्। तस्मात्) पुष्टिमार्गी.. सात्त्विकमार्गी ज्ञान-अभावे (अपि) पूजा-उत्सवा आदिषु तिष्ठेत्॥

(परंतु) दुःखी.. आर्त भी यदि कृष्णको भजे, हंमेशाके लिये लोक नष्ट होंगे, (मुक्ति पायेगा, इसलिये) पुष्टिमार्गी.. सात्त्विकमार्गी, ज्ञानके अभावमें (भी भगवानके) पूजा-उत्सवोमें रहें.. भाग लें। (उससे सात्त्विकताको ज्यादा पुष्टि मिलेगी।)

तात्पर्य ः दुःखीको प्रथम क्या चाहिये? दुःखमेंसे मुक्ति! क्या वो भगवान नहीं जानते? फिर भी उनके ज्यादातर भक्त दुःखी रहतें है! यह वास्तविकता है। किसी भक्तने दुःखोंकी फरीयाद नहीं की है। हालाँकि कुंतामाता जैसे भक्तोंने विपदाएँ मांगी है, यदि दुःखमें तेरा साथ मिलता हो तो दुःख भी चलेगा! वो दें!

दुःखमें या कष्टमें भी, निष्कामभावसे भगवानके पास जानेवाले महान है, महान होतें है। क्योंकि वे जानतें है कि ये सुख-दुःखके कारण हमारे कर्म है, आयेंगे और जायेंगे। दूसरा, एक सामान्य नौकरी लेने जातें है तो कितनी परीक्षाएँ लेतें है! तो क्या भगवान नहीं चकासेंगे? देवलोग भी तराशेंगे! इसलिये श्रीकृष्णमार्गीको दुःखोंसे गभराना नहीं है, निस्वार्थभावसे सेवा करते जाना है।

इसलिये अभ्यास या स्वाध्याय, नियमित श्रवण या वांचन, भजन-कीर्तन या सत्संग... यह सब आवश्यक है। संस्कार व शिक्षण विना तो किसी मार्गमें आगे नहीं जायेंगे! ऐसा न हो इसके लिये आचार्यश्री कहतें है कि ज्ञान न होगा तो चलेगा पर योग्य शिक्षा मिलें, रहें उसके लिये उत्सव, तीर्थ या सत्संगमें भाग लें; जिससे मन हरिमें लगे! मानसीसेवाके लिये मन योग्यता पायें और बुद्धि भगवानमें स्थिर होगी! संसारासक्ति कम होगी तो प्रभुसेवाकी वृत्ति बढेगी!

१८ मर्यादास्थस्तु गंगायां श्रीभागवततत्परः।
अनुग्रहः पुष्टिमार्गे नियामक इति स्थितिः॥

मर्यादास्थ	तु	गंगायाम्	श्रीभागवत-तत्परः
मर्यादामार्गी.. रूढीचुस्त	भी	गंगा तटपर	भगवानके प्रसंगोमें तत्पर

अनुग्रहः	पुष्टिमार्गे	नियामकः	इति	स्थितिः
ग्रह लेंगे	पुष्टिमार्गमें	नियामक श्रीकृष्ण	ऐसी	व्यवस्था है

तु गंगायाम् (ज्ञानीनाम् संगे) मर्यादास्थः श्रीभागवत-तत्परः।
(ततः) नियामकः श्रीकृष्णः पुष्टिमार्गे अनुग्रहः इति स्थितिः॥

परंतु गंगाकिनारे (ज्ञानीजनोंके संगमें) मर्यादास्थ.. सांस्कृतिक (भक्त भी यदि) श्रीभगवान विषयक प्रसंगोमें तत्पर रहें.. व्यस्त रहें (तो) नियामक.. स्वयं श्रीकृष्ण (उसको) पुष्टिमार्गमें.. सात्विकभक्तोमें ग्रह लेंगे.. कृपा करके अपना लेंगे, ऐसी स्थिति.. व्यवस्था है।

तात्पर्य : मर्यादामार्गी अर्थात् संस्कृत मानव! सनातनी जो वैदिकधर्मका चूस्त पालक है। जो संसारके साथ थोडा समय धर्मके लिये भी देता है। जिनको क्वचित् भक्तिकी विशेष समझ न होगी पर, इस गंगातटपर.. प्रेमप्रवाहके तटपर, भगवद् उत्सवोमें या प्रसंगोमें भाग लेता है.. तत्पर रहेता है, वह सच्चा मर्यादामार्गी है।

जिसके पास ज्ञान नहीं है पर, गंगातटे अर्थात् ज्ञानियोंके संग रहेता है। सांप्रदायिक भक्त है, रीति-रीवाजका पालन करें, उपरांत भगवानमें ही आसक्त रहें उसे स्वयं भगवान ही अपना मानकर पुष्टि देतें है.. ज्ञानी-भक्त बना देंगे!

इस भक्तिमार्गके नियामक ही भगवान स्वयं है! जिस समय भक्तिभाव जगेगा, पूर्ण प्रामाणिक होंगे.. शत प्रतिशत शरणभाव होगा तभी, भगवान किसीकी राह नहीं देखेंगे, किसी दूसरेका अनुमोदन नहीं मांगेंगे! तुरंत स्वीकार कर लेंगे!

हम जो भी हो! धर्ममार्गी, धर्मपालक, धर्मरक्षक या धर्मधूरंधर! जैसे भी हो, अंदर बहेती गंगा.. प्रेमप्रवाहको जान लें। प्रभुका वह प्रेम पहचानेंगे तभी प्रभुकी आसक्ति होगी.. बढेगी! उनके कार्योमें, उत्सवोमें तन्मय होनेकी उत्सुकता जगेगी। उसके सिवा सबकुछ निरर्थक है.. ढोंग है, बाह्याचार है! आचार्यश्रीका यह सिद्धांत अतिशय मननीय है!

१९ उभयोस्तु क्रमेणेव पूर्वोक्तैव फलिष्यति।
ज्ञानाधिको भक्तिमार्ग एवं तस्मान्निरूपितः॥

उभयोः	तु	क्रमेण	एव	पूर्व-उक्त	एव	फलिष्यति
दोनोंमें	परंतु	क्रमपूर्वक	ही	पहले हा वैसे	ही	फल मिलेगा
ज्ञान	अधिकः	भक्तिमार्गे	एवम्	तस्मात्	निरूपितः	
ज्ञान	विशेष है	भक्तिमार्गमें	भी	इसलिये	निरुपण किया	

तु, पूर्व-उक्त एव (१३-१४), क्रमेण एव उभयोः (पुष्टिमार्गे च मर्यादामार्गे) फलिष्यति। भक्तिमार्गः (अपि) ज्ञान-अधिकः, (ज्ञानपूर्ण भक्तिमार्ग अधिकः), तस्मात् एवम् निरूपितः॥

परंतु, पहले कहा वैसे ही (श्लोक १३-१४), क्रमपूर्वक ही दोनोंका (मर्यादामार्गका और पुष्टिमार्गका) फल मिलेगा। भक्तिमार्गमें (भी) ज्ञान अधिक.. विशेष है। ज्ञानपूर्ण भक्तिमार्ग अर्थात् पुष्टिमार्ग अधिक है, इसलिये ऐसा निरूपण किया।

तात्पर्य : सामान्य भक्त, जो मर्यादामार्गी है, जो परंपरासे या रूढीगत ईश्वरको मानता और भजता है। वो ईश्वरको मान्य तो है परंतु उतना नहीं जितना पुष्टिमार्गी.. ज्ञानीभक्त! पुष्टिमार्गीको श्रीकृष्णके भगवान.. परमात्मा होनेका ज्ञान है और सैद्धांतिकज्ञान होनेसे, सृष्टि रहस्य, मायावाद, गुण-कर्म विभाग वगैरेका यथावत् ज्ञान है, इसलिये उसे अधिक फल मिले ऐसा सूचन है। ईश्वरकी दृष्टिमें तन-मन-धनके बलसे अधिक ज्ञानबलका महत्त्व ज्यादा है! उसमें भी माहितीज्ञान नहीं, अनुभूत ज्ञानकी किंमत है।

आज कोई भी सांप्रदायिक चित्र देखें, संप्रदायमें धनवानोंका महत्त्व ज्यादा है, रखना ही पडे क्योंकि, संप्रदाय धनसे चलता है! ज्ञानसे या भगवानसे नहीं! महाविद्वान भी वो, जो धनवानोंको आकर्षित करें! परंतु भगवानकी दृष्टिमें या प्रकृतिके न्यायमें ऐसा चलेगा क्या? इसलिये मात्र भक्ति करता हुआ और ज्ञान संपादन करके भक्तिमार्गमें रहते हुएमें बडा अंतर है। उसके आधारसे ही फल मिलेगा या भगवानको प्रिय होगा।ेसा निरूपण करनेका श्रीवल्लभका आशय यही होगा कि फलेच्छासे, परंपरासे, देखादेखीसे भगवानकी शरणमें न जायें, अभ्यास करें.. ज्ञान प्राप्तिका प्रयत्न करें फिर उसकी शरणमें जायें, पुष्टि त्वरीत मिलेगी!

२० भक्त्यभावे तु तीरस्थो यथा दुष्टैः स्वकर्मभिः।
अन्यथा भावमापन्नस् तस्मात्स्थानाच्च नश्यति॥

भक्ति-अभावे	तु	तीरस्थः	यथा	दुष्टैः	स्वकर्मभिः
भक्तिके अभावमें	परंतु	किनारे रहकर	जैसे	दुष्टजन	अपने कर्मोंसे

अन्यथा	भावम्	आपन्नः	तस्मात्	स्थानात्	च	नश्यति
दूसरें	भावको	प्राप्त करके	इसलिये	स्थानसे	और	नाश पाता है

तु (गंगा) तीरस्थः भक्ति अभावे (प्रवाहमार्गे), यथा स्वकर्मभिः दुष्टैः अन्यथा भावम् आपन्नः च तस्मात् स्थानात् नश्यति॥ (मानवजन्मम् वृथा करोति॥)

परंतु, (गंगाजीके) तीर पर.. किनारे रहकर, भक्तिके अभावमें (प्रवाहमार्गी) जैसे अपनें कर्मोंसे दुष्टजन अन्य भावोंको प्राप्त करतें है और इसलिये स्थानभ्रष्ट होतें है.. मानवपद गँवाते है। (मानवजन्म वृथा करतें है।)

तात्पर्य : गंगाकिनारे अर्थात् ज्ञानियोंके बीच रहकर भी अथवा जो मात्र ज्ञान प्राप्तिका साधन है ऐसे मनुष्य देहमें.. इस अमूल्य भवमें, भगवानकी भक्ति छोडकर, कुछ गलत ही ध्यानमें लेता है। भोगविलासमें जीवन व्यतीत करके वो प्रवाहमार्गी जीव, मनुष्यत्व गँवा देता है। पशुवत जीवन व्यतीत करके अन्य योनियाँ पाता है या फिर आसुरीवृत्ति धारण करके प्रलयपर्यंत मनुष्य योनीसे वंचित रहता है। आचार्यको इस बाबतका कितना सूक्ष्म अभ्यास है! इसलिये कहतें है, क्यों व्यर्थमें जीवन गँवाते हो? मनुष्य जीवन कितनी तपश्चर्या बाद मिलता है और उसे इस प्रकार पशुवत् जीकर गँवा दोगे? मनुष्य जीवन ही मानों गंगाकिनारा है!

देहमें बहेता गंगारूपी प्रेमप्रवाह मात्र मनुष्य ही पहेचान सकता है! मनुष्य ही उसमें स्नान कर सकें! विषयभोगोंकी ना नहीं पर भोगोंमें पूरा जीवन ही व्यर्थ सिद्ध हो तो कैसे चलेगा? जीवनमें अन्य सिद्धि मिले या न मिले, योग प्राप्त हो या न हो, भगवान प्रति प्रयाण हो या न हो, चलेगा परंतु जैसा तैसा जीवन जीकर मनुष्यत्वका स्थान छोड दें? राजसिकभाव या तामसिकभावका परिणाम ही आसुरीभाव है। उनको फिरसे मनुष्य देह पाना अशक्य है। इसलिये सात्त्विक जीवन, मर्यादित जीवन फिर भक्तिपूर्ण जीवन जीना चाहिये।

२१ एवं स्वशास्त्रसर्वस्वं मया गुप्तं निरूपितम्।
एतद्बुद्ध्वा विमुच्यते पुरुषः सर्वसंशयात्॥

एवम्	स्वशास्त्र	सर्वस्वम्	मया	गुप्तम्	निरूपितम्
ऐसा	स्वरचित शास्त्र	शास्त्रके सर्वार्थ	मुझसे	रहस्य	निरूपित हुआ
एतत्	बुद्ध्वा	विमुच्यते	पुरुषः		सर्वसंशयात्
इसे	जानकर	मुक्त होता है	पुरुष.. मानव		सर्व संशयोंसे

एवम् गुप्तम् स्वशास्त्रम् सर्वस्वम् मया (वल्लभाचार्येण भक्तिशास्त्रम्) निरूपितम्। एतत् बुद्ध्वा पुरुषः सर्वसंशयात् विमुच्यते, (यथार्थ ज्ञानम् प्राप्यते)॥

ऐसा रहस्यमय.. गुह्य स्वरचित शास्त्रके सर्व सिद्धांत.. निर्णय, मुझसे (श्रीवल्लभाचार्य द्वारा भक्तिशास्त्ररूपसे) निरूपित हुए। इसे जानकर पुरुष.. मनुष्य सर्व संशयोंसे मुक्त होगा, (अर्थात् यथार्थ ज्ञान प्राप्त करके मुक्त होगा।)

तात्पर्य ः संशय तो होगा! हरेक क्षेत्रमें रहेगा! अध्यात्म या भक्तिके क्षेत्रमें ज्यादा रहेंगे! कारण, अनुभव मिलता नहीं, दूसरा कहे उसे ही मानना है। कभी विश्वास या श्रद्धा डगमग होती है, क्या करें समझमें नहीं आता।

आज धर्म.. संप्रदाय.. विविध मार्ग कलुषित हुए है। धूरंधर पाखंडी हुए है। मात्र और मात्र भगवानका भरोसा है। लगता है वो ही सच्चा रास्ता है! पूर्ण भावसे, संपूर्ण श्रद्धासे, परिपूर्ण शुचितासे ईश्वरका शरण लेंगे तो अवश्य भगवान रास्ता करेंगे। किसी गुरुको अपने तक भेज देंगे अथवा ऐसे महापुरुषके ज्ञानको भगवान ही समझा देंगे! ददामि बुद्धियोगं...

आचार्यश्रीने भगवानके विषयमें जो संशय थे उन्हें दूर किये। अब यह ज्ञान ना समझ पायें या विपरीत अर्थ हो जाय तो समझना चाहिये कि ज्यादा अभ्यासकी आवश्यकता है, ज्यादा शुद्ध या सात्त्विक जीवन करना पडेगा। कुछ तो कमी है जिससे समझमें नहीं आता! भगवानके पास ही जिज्ञासु होकर जायें।

इस भक्तिमार्गमें संशय छूटें होंगे तो ईश्वरकृपा! आगे बढनेका रास्ता साफ हुआ। इन सिद्धांतोंको जीवनमें लाकर पुष्टिमार्गमें प्रगति करके कृतकृत्य होंगे।

श्रीभगवानके लिये संदर्भ : ४.६ः अज हूँ अव्ययी भी भूतेश्वर होनेसे भी, प्रकृतिका स्वामी होकर प्रगटुं आत्ममायासे। ४.९ः जन्म कर्म मम दिव्य ऐसे जो जानें तत्त्वसे.. ७.६ः ..मैं समग्र जगतका प्रभव तथा प्रलय। ७.७ः मुझसे पर ना अन्य कोई है हस्ति धनंजय! मुझमें सर्व पिरोया सुत्रमें जैसे मणिगण। ७.१९ः ..'वासुदेव ही सर्व' देखें वो महात्मा सुदुर्लभ। ७.२५ः ना मैं प्रकाशित सभीको योगमायासे आवृत.. ८.२१ः अव्यक्त वो अक्षर ऐसा कहे उसे परं गति.. ९.१८ः गति भर्ता प्रभु साक्षी निवास शरण सुहृत, प्रभव प्रलय स्थान निधान बीज अव्ययी। १०.१२ (अर्जुन)ः परं ब्रह्म परं धाम पवित्र परमं आप, पुरुष शाश्वत दिव्य आदिदेव अज विभु। १०.१४ (अर्जुन)ः ..नहीं भगवन्! आपको जानें देव न दानव। १३.१२ः ..अनादिरूप परंब्रह्म ना सत् ना असत् कहा। १३.२२ः उपद्रष्टा अनुमन्ता भर्ता भोक्ता महेश्वर, परमात्मा ऐसा कहा देहे परम पुरुषको। १४.२७ः ब्रह्मका मैं ही आश्रय अमृत व अव्ययका.. १५.१८ः जैसे क्षरसे अतीत मैं अक्षरसे भी उत्तम, इसलिये हूँ लोके वेदे प्रसिद्ध पुरुषोत्तम।

ब्रह्म तत्त्व.. ब्रह्मांड.. सृष्टिके सदर्भ : २.७२ः ये ब्राह्मीस्थिति पार्थ! ना इस पदे व्यामोह है, स्थित रहे अंते पायें ब्रह्मनिर्वाणे सद्गति. ५.१९ः यहाँ ही वो जीते सर्ग जिनका समभावी मन, निर्दोष व सम ब्रह्म इसलिये ब्रह्मे वो स्थित। ६.७ः जीता आत्मा प्रशांतने परमात्मा समाहित.. ७.१४ः दैवी है ये गुणमयी मेरी माया दुस्तरा, मेरे ही शरण आयें वो मायाको तर जायें। ८.३ः अक्षर है परंब्रह्म स्वभाव अध्यात्म कहा.. ८.१३ः ॐ एकाक्षरी ब्रह्मको जपे मेरे नाम सह, जो विरमे त्यजें देह वो पायें परमगति। ९.१०ः मुझ अध्यक्षे प्रकृति प्रभवे है चर अचर, हेतुपूर्वक हे कौंतेय! जगत है परिवर्तित। १०.२ः ना जानें प्रभव मेरा ना देव ना महर्षि, मैं आदि सभीका देव महर्षिका भी सर्वशः। १०.२०ः मैं आत्मा गुडाकेश! सर्व भूतोमें रहा, मैं आदि और मध्य भूत मात्रका अंत भी। १०.२१ः आदित्योमें मैं विष्णु.. १०.२३ः रुद्रोमें शंकर हूँ व.. १३.१६ः अविभाजित भूतोमें विभाजित जैसा स्थित, भूतभर्ता वो ही ज्ञेय ग्रसिष्णु व प्रभविष्णु। १५.७ः मेरा ही अंश जीवलोके जीवरूपे सनातन, मन इंद्रियाँ सहित प्राकृत होकर आकर्षे। १८.५४ः ब्रह्मभूत प्रसन्नात्मा न शोक न इच्छा करें, समान सर्व भूतोमें मेरी भक्ति लहे परम। १८.६१ः ईश्वर सर्वभूतोंके हृदये अर्जुन! वसे, भमायें सर्वभूतोंको यंत्रे धरें मायासे।

भगवान = परंब्रह्म.. परमात्मा.. परमेश्वर.. देवाधिदेव.. योगेश्वर.. वासुदेव.. कृष्ण.. अव्यक्त.. अचिंत्य.. अविनाशी.. अविकारी.. अविज्ञेय.. अक्षर.. अक्षय.. अव्यय.. अचल.. अच्युत.. अकाल.. अनंत.. अतुल.. अप्रमेय.. अध्यक्ष.. अज.. अमर.. अनन्य.. आदी.. अनादी.. अंतर्यामी.. अखिलांशी.. अतिगुह्य.. सर्वज्ञ.. सर्वसमर्थ.. सर्वव्यापी.. सर्वद्रष्टा.. सर्वस्रोत.. सर्वगोप्ता.. सर्वनिधि.. सर्वनियंता.. सर्वोत्तम.. सर्वानंद.. सर्वग.. सर्वत्र.. स्वतः.. स्वयंभू.. स्वराट.. विराट.. सूक्ष्मतम.. यज्ञपुरुष.. पुरुषोत्तम.. क्षेत्रज्ञ.. प्रभव.. प्रवर्तक.. प्रलय.. प्रशास्ता.. हरिहर.. केशव.. ब्रह्मी।

ब्रह्म = ॐ तत् सत्.. त्रिमयम्.. विभु-प्रभु-शंभु.. बृहत्.. अतर्क्य.. दुर्ज्ञेय.. साक्षी.. शाश्वत.. महामायिन्.. चिदानंद.. विद्वैत.. अभूत.. विभूत.. महाप्राण.. महाशक्ति.. प्रणव.. स्वस्ति.. ज्ञानगम्य.. अमूर्ति.. अनेकमूर्ति.. कर्मज्ञ.. धर्मस्थ।

ब्रह्मांड = ब्रह्मांश.. पुरुषवृत्त.. महत्प्रकृति.. महामाया.. सर्वविध.. विज्ञेय.. आनंदघन.. महाज्योति.. सर्वप्रकाश.. चितिशक्ति.. महाभूत.. अश्वत्थ.. विश्व।

सृष्टि

मुख्यतः:

- **चैतन्य सृष्टि** — चेतनात् स चैतन्यः
  - पंच महाभूत..
  - वृक्ष, वनस्पति, वनराजी..
  - कृमि-किटक..
- **पशु सृष्टि** — पश्यति स पशुः
  - मांसाहारी
    - * जीभसे पीते
    - * तीक्ष्ण नखवाले
    - * तीव्र दंतवाले
    - * मुख्यत्वे सुंदर, आकर्षक
  - शाकाहारी
    - * चूसकर पीते
    - * सादे नखवाले
    - * सरल दंतवाले
    - * साधारण देखाव, बडे पेटवाले
- **मनु सृष्टि** — मन्यते स मनुः
  - स्वेच्छाहारी
    - प्राकृत मानव
      - आसुरीवृत्त — अप्रगत
      - दैवीवृत्त — विकसित
    - मर्यादी मानव
      - ज्ञानमार्गी — शून्यमार्गी
      - भक्तिमार्गी — योगमार्गी
    - पुष्ट मानव
      - पूर्ण पुरुष — सिद्ध संन्यासी वा ज्ञानीभक्त